बिहार स्टेट ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन

बनाम

बिहार राज्य

(Bihar State Transport Corporation

Vs.

The State of Bihar)

(19 फरवरी, 1970)

(न्या० जे० एम० शैलत और जी० के० मित्तर)

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14)—धारा 2(ध)—कर्मचारी के अवचार के लिए सेवा की समाप्ति—सेवा की ऐसी समाप्ति नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप होनी चाहिए—कारपोरेशन द्वारा विभागीय उपक्रम के "पंजी में (आन दि रोल्स)" कर्मचारियों को ग्रहण करना—ऐसे कर्मचारियों के अन्तर्गत वे भी आते हैं जिन्हें सेवा में माना गया है तथा उपक्रम की शक्ति और कृत्यों के ग्रहण किए जाने के अन्तर्गत कर्मचारियों की सेवा की शर्तें और अनुशासनिक कार्रवाई का विनियमन भी आता है—श्रम न्यायालय—श्रम न्यायालय को सेवा की समाप्ति के आदेश की शब्द योजना की पृष्ठभूमि पर विचार करने की अधिकारिता होती है—सरशियोरेराई (उत्प्रेषण)—यदि श्रम न्यायालय का यह निष्कर्ष, कि सेवा की समाप्ति का आदेश दण्डात्मक है, न तो अयुक्तियुक्त है और न विपरीत है तो उच्च न्यायालय द्वारा उसमें हस्तक्षेप करना न्यायोचित नहीं होगा।

तृतीय प्रत्यर्थी उस राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी में प्रधान लिपिक था जो प्रत्यर्थी राज्य सरकार का विभागीय उपक्रम है। उसकी नियुक्ति अस्थायी थी और बिना सूचना और बिना कोई कारण बताए समाप्त किए जाने योग्य थी। तारीख 18 फरवरी, 1959 के आदेश द्वारा उसे सेवोन्मुक्त कर दिया गया था। 20 अप्रैल, 1959 को राज्य सरकार ने रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ऐक्ट, 1950 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी कारपोरेशन की स्थापना की और अधिसूचना के अधीन कारपोरेशन को उन "सभी शक्तियों का प्रयोग करना था और सभी कृत्य करने थे" जिनका पालन तब तक राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी द्वारा किया जाता था। फरवरी, 1961 में राज्य सरकार ने तृतीय प्रत्यर्थी की सेवा की समाप्ति के प्रश्न को श्रम न्यायालय को निर्दिष्ट कर दिया।

श्रम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह कर्मकार था, यह कि सेवा की समाप्ति सुलह अधिकारी के यह संबोधित करने वाले कारपोरेशन के पत्र को ध्यान में रखते हुए दण्डात्मक प्रकृति की थी कि तृतीय प्रत्यर्थी ने अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में विभिन्न अनियमितताएं की थीं और यह कि अपीलार्थी कारपोरेशन राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी का हक उत्तराधिकारी था। इसलिए श्रम न्यायालय ने सेवा की समाप्ति को अवैध अभिनिर्धारित किया और तृतीय प्रत्यर्थी को उसकी सेवा में पुन: बहाल करने के लिए कारपोरेशन को निदेश किया। अधिनिर्णय को अभिखण्डित करने के लिए उच्च न्यायालय में किया गया रिट पिटीशन खारिज कर दिया गया था। उच्चतम न्यायालय में अपील करने पर यह दलील दी गई थी कि (i) तृतीय प्रत्यर्थी औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(ध) में यथा-परिभाषित कर्मकार नहीं था; (ii) उसकी सेवा की समाप्ति का आदेश मात्र सेवा की समाप्ति का आदेश था और (iii) आदेश को अवैध मान लेने पर भी उसका उपचार राज्य सरकार के विरुद्ध था न कि कारपोरेशन के विरुद्ध। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—प्रथमदृष्टया तृतीय प्रत्यर्थी प्रशासनिक कार्यालयों का न तो कोई अधिकारी था और न कार्यालय कर्मचारिवृन्द का कोई सदस्य ही था। इसलिए उसे स्थायी आदेश लागू होने थे। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(ध) में कर्मकार की परिभाषा के व्यापक होने के कारण तृतीय प्रत्यर्थी को धारा 2(ध) के अर्थान्तर्गत ऐसा कर्मकार अभिनिर्धारित करना चाहिए जिसकी सेवा की शर्तें स्थायी आदेश द्वारा शासित होते थे।

स्थायी आदेश में उसमें प्रगणित अवचार के दोषी किसी कर्मचारी पर विचार करने की कोई प्रक्रिया उपबंधित नहीं की गई है किन्तु यह सुस्थापित है कि अवचार के आधार पर सेवा की समाप्ति केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप की जा सकती है। सेवा की समाप्ति का आदेश मात्र सेवा की समाप्ति के आदेश के शब्दों में व्यक्त होने पर भी श्रम-न्यायालय आदेश की प्रत्यक्ष शब्द रचना की पृष्ठभूमि पर विचार करने का और यह विचार करने का हकदार है कि क्या वह आदेश मात्र सेवा की समाप्ति का आदेश है या दण्ड के रूप में अधिरोपित किया गया है। श्रम न्यायालय का यह निष्कर्ष, कि प्रत्यर्थी 3 की सेवा की समाप्ति मात्र सेवा की समाप्ति का आदेश नहीं था बल्कि कर्त्तव्यों के निर्वहन में की गई अनियमितताओं के लिए शास्ति के रूप में दिया गया था, न तो अयुक्तियुक्त था और न विपरीत था और सरशियोरेराई के रिट के द्वारा ऐसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने से उच्च न्यायालय का इन्कार करना ठीक था। (पैरा 6)

कर्मचारिवृन्द का नियोजन और उनकी सेवा की शर्तों का विनियमन, जिसमें अनुशासनिक कार्रवाई भी है, स्पष्टतः राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी की शक्तियों और कृत्यों में से एक था और अधिसूचना के अधीन इसका प्रयोग और पालन भी अपीलार्थी कारपोरेशन द्वारा किया जाना था। कारपोरेशन के इस प्रकथन से कि उसने राज्य ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन के ऐसे कर्मचारियों को ग्रहण कर लिया था जो अथारिटी की "पंजी में (आन दि रोल्स)" थे, केवल वे कर्मचारी अभिप्रेत हैं जो अथारिटी की सेवा में थे और इसीलिए तृतीय प्रत्यर्थी की सेवा की समाप्ति को अवैध अभिनिर्धारित किया गया था, उसे अथारिटी की सेवा में बना हुआ माना गया था और इसलिए उसकी पंजी में उसे माना गया। इसलिए अपीलार्थी कारपोरेशन के सम्बन्ध में यह मानना चाहिए कि उसने प्रत्यर्थी 3 की सेवा ग्रहण की थी। (पैरा 9)

सिविल अपीली अधिकारिता : 1966 की सिविल अपील संख्या 1065.

1962 के प्रकीर्ण न्यायिक मामला संख्या 217 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 17 सितम्बर, 1965 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री सरजू प्रसाद, आर० पी० श्रीवास्तव, सरनजीत सिंह जौहर और के० के० सिन्हा
प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	श्री डी० गोबंधन

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति जे० एम० शैलत ने दिया।

न्यायाधिपति शैलत—

यह अपील विशेष इजाज़त लेकर श्रम न्यायालय द्वारा, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 10(1) के अधीन उसे निर्दिष्ट औद्योगिक विवाद पर पारित अधिनिर्णय को संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन चुनौती देने वाले रिट पिटीशन को खारिज करने वाले पटना उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध की गई है।

2. निर्देश निम्नलिखित तथ्यों से उद्भूत हुआ : 20 अप्रैल, 1959 के पूर्व बिहार सरकार अपने विभागों में से एक राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी नाम के विभाग की मार्फत राज्य में सड़क परिवहन के उपक्रम का संचालन करती थी। उक्त अथारिटी ने प्रत्यर्थी 3 को डिविजनल मैनेजर, राज्य ट्रान्सपोर्ट, भागलपुर के कार्यालय में 27 जुलाई, 1956 से प्रधान लिपिक के रूप में नियुक्त किया। उसकी

नियुक्ति के आदेश में यह कथित था कि नियुक्ति पूर्णत: अस्थायी है और बिना सूचना और बिना कारण बताए समाप्त की जा सकती है। राज्य परिवहन आयुक्त, राज्य ट्रान्सपोर्ट द्वारा जारी किए गए तारीख 18 फरवरी, 1959 वाले आदेश द्वारा उसे तुरन्त सेवोन्मुक्त कर दिया गया था। 20 अप्रैल, 1959 को राज्य सरकार ने रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ऐक्ट, 1950 का 64 की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए 1 मई, 1959 से अपीलार्थी कारपोरेशन की स्थापना की। धारा 3 के अधीन जारी की गई अधिसूचना में अन्य बातों के साथ यह भी कथित किया गया था कि "उक्त कारपोरेशन, उक्त तारीख से उन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा और उन सभी कृत्यों का पालन करेगा जिनका प्रयोग और पालन इस समय राज्य ट्रान्सपोर्ट, बिहार द्वारा किया जा रहा है।" इसी बीच प्रत्यर्थी 3 की सेवा की समाप्ति के प्रश्न की, प्रत्यर्थी 4 द्वारा सहायक श्रम आयुक्त के समक्ष पैरवी की गई थी। सुलह कार्यवाहियों के असफल हो जाने के कारण राज्य सरकार ने विवाद को तारीख 24 फरवरी, 1961 वाले आदेश द्वारा श्रम न्यायालय को निर्दिष्ट कर दिया।

3. श्रम न्यायालय का यह निष्कर्ष था : (क) कि प्रत्यर्थी 3 औद्योगिक विवाद अधिनियम और अपीलार्थी कारपोरेशन को शासित करने वाले स्थायी आदेशों में कर्मकार की परिभाषा के अन्तर्गत कर्मकार था, और यह कि यद्यपि उसे प्रधान लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था तथापि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था कि प्रधान लिपिक की हैसियत में उसका कार्य प्रबन्धात्मक या पर्यवेक्षकीय था, (ख) यह कि प्रत्यर्थी 3 की सेवा समाप्त करने वाला तारीख 18 फरवरी, 1959 का आदेश मात्र सेवा की समाप्ति करने वाला नहीं था बल्कि उसकी प्रकृति दण्डात्मक थी। श्रम न्यायालय ने अपीलार्थी कारपोरेशन द्वारा उक्त सुलह अधिकारी को यह संबोधित करने वाले तारीख 30 जनवरी, 1960 के पत्र का अवलंब लिया कि प्रत्यर्थी 3 की सेवा इसलिए समाप्त कर दी गई थी क्योंकि "कतिपय जांचों के दौरान राज्य ट्रान्सपोर्ट विभाग ने यह पाया था कि श्री शिव प्रसाद सिन्हा ने अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में विभिन्न प्रकृति की विभिन्न अनियमितताएं की थीं।" श्रम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त अभिकथित अनियमितताएं उक्त स्थायी आदेश द्वारा यथापरिभाषित अवचार की कोटि में आती हैं और यह कि इसलिए प्रत्यर्थी 3 की सेवा बिना किसी अनुशासनिक जांच के और उसमें प्रत्यर्थी को सुनवाई का अवसर दिए बिना उन अनियमितताओं के आधार पर समाप्त नहीं की जा सकती है। स्वीकारात्मक रूप से ऐसी किसी जांच के न किए जाने के कारण श्रम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त आदेश न्यायोचित नहीं था क्योंकि वह प्रत्यर्थी 3 की सेवा को समाप्त करने की शक्ति

1970(2) eILR(PAT) SC 1

के सद्भाविक प्रयोग में नहीं किया गया था। अपीलार्थी कारपोरेशन द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष न तो उक्त अनियमितताओं को साबित करने के लिए और न ही यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य पेश किया गया था कि उक्त आदेश न्यायोचित था। परिणामतः श्रम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि उक्त आदेश अविधिमान्य था और इसलिए अप्रवर्तनशील था, अतः प्रत्यर्थी 3 के सम्बन्ध में यह समझा जाएगा कि वह सेवा में बना रहा है। इसके अलावा उसने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी कारपोरेशन उक्त राज्य ट्रान्सपोर्ट का हक उत्तराधिकारी था और राज्य ट्रान्सपोर्ट के भूतपूर्व कर्मचारियों को ग्रहण कर लेने के कारण प्रत्यर्थी 3 के सम्बन्ध में यह समझा गया था कि वह अपीलार्थी कारपोरेशन की सेवा में बना रहा था। इन निष्कर्षों के आधार पर श्रम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि सेवा की समाप्ति का उक्त आदेश अविधिमान्य था, यह कि प्रत्यर्थी 3 के सम्बन्ध में यह समझा गया था कि वह राज्य ट्रान्सपोर्ट की सेवा में बना रहा था और उसके पश्चात् अपीलार्थी कारपोरेशन की सेवा में बना रहा, और इसी आधार पर अपीलार्थी कारपोरेशन को प्रत्यर्थी 3 को उसकी सेवा में पुनःस्थापित करने और फरवरी, से सितम्बर, 1959 तक की अवधि के लिए प्रतिकर देने का निदेश दिया।

4. इस पर अपीलार्थी कारपोरेशन ने उक्त अधिनिर्णय अभिखण्डित करने के लिए उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल किया। रिट पिटीशन के समर्थन में उच्च न्यायालय के समक्ष तीन प्रश्न उठाए गए थे : (1) यह कि प्रत्यर्थी 3 की सेवाएं अपीलार्थी कारपोरेशन की स्थापना के पूर्व समाप्त की गई थीं और परिणामतः प्रत्यर्थी 3 का उपचार राज्य सरकार के विरुद्ध था न कि कारपोरेशन के विरुद्ध इसलिए श्रम न्यायालय की उसे बहाल करने या प्रतिकर देने के लिए कारपोरेशन को निदेश देने की कोई अधिकारिता नहीं थी, (2) यह कि प्रत्यर्थी 3 लिपिकीय कार्य में लगाया गया था और इसलिए अधिनियम में यथापरिभाषित कर्मकार नहीं था, (3) यह कि प्रत्यर्थी 3 की सेवाओं की समाप्ति सेवा की संविदा के निबन्धनों के अनुरूप थी और इसलिए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का सेवा की ऐसी समाप्ति को लागू होने का कोई प्रश्न नहीं था। उच्च न्यायालय ने तीनों दलीलों को अस्वीकार कर दिया, श्रम न्यायालय के आदेश को अभिखण्डित करने से इंकार कर दिया और यह अभिनिर्धारित करते हुए रिट पिटीशन को खारिज कर दिया कि अपीलार्थी कारपोरेशन यह सिद्ध करने में असफल रहा था कि अभिलेख पर प्रकटतः विधि की कोई स्पष्ट भूल थी।

5. अपीलार्थी के काउन्सेल ने हमारे समक्ष ये दलीलें दी : (क) यह कि प्रत्यर्थी लिपिक के रूप में नियुक्त अस्थायी कर्मचारी था और इसलिए औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(ध) में यथापरिभाषित कर्मकार नहीं था, (ख) यह कि उसकी सेवाएं समाप्त करने वाला आदेश मात्र सेवा की समाप्ति का आदेश था और इसीलिए श्रम न्यायालय ऐसे आदेश में हस्तक्षेप करने या उसे अपास्त करने का हकदार नहीं था, और (ग) यह कि कारपोरेशन के अस्तित्व में आने के पर्याप्त समय पूर्व राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी द्वारा आदेश के पारित किए जाने के कारण यह मान लेने पर भी कि उक्त आदेश अवैध था, प्रत्यर्थी 3 का उपचार राज्य सरकार के विरुद्ध था न कि कारपोरेशन के विरुद्ध ।

6. इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपीलार्थी कारपोरेशन की स्थापना के पूर्व राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी ही परिवहन का उपक्रम चलाता था, जिसे उसके कर्मचारियों की सेवा की शर्तें विनियमित करने वाले स्थायी आदेश थे। राज्य ट्रान्सपोर्ट अस्थायी आधार पर सरकार द्वारा मंजूर किए जाने के कारण, जैसा कि स्थायी आदेश 3 से यह स्पष्ट है, उसके कर्मचारी दो प्रवर्गों में विभाजित हुए अर्थात् अस्थायी और आकस्मिक। स्थायी आदेश 2(डी) में "कर्मचारी" की परिभाषा इस रूप में दी गई है जिससे ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी द्वारा भाड़े पर या इनाम के लिए किसी कुशल या अकुशल, शारीरिक या लिपिकीय श्रम करने के लिए नियोजित किया गया हो। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि प्रत्यर्थी 3 राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी का कर्मचारी था। परन्तु स्थायी आदेश 1 में यह उपबन्धित था कि उक्त स्थायी आदेश प्रशासनिक कार्यालयों और अनुभागों में नियोजित अधिकारियों और कार्यालय के कर्मचारिवृन्द को छोड़कर राज्य ट्रान्सपोर्ट के केवल कर्मकारों को लागू होना था। प्रत्यर्थी 3 की नियुक्ति के आदेश से यह दर्शित होता है कि उसे भागलपुर स्थित डिवीजनल मैनेजर के कार्यालय में नियुक्त किया गया था। प्रथमदृष्टया प्रत्यर्थी 3 न तो प्रशासनिक कार्यालयों या अनुभागों में कोई अधिकारी था और न कार्यालय कर्मचारिवृन्द का सदस्य ही था। इसलिए उसे स्थायी आदेश लागू होने थे। कारपोरेशन की ओर से ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था कि प्रत्यर्थी 3 का, प्रधान लिपिक के रूप में प्रबन्धकीय या पर्यवेक्षीय कर्त्तव्य से कोई सरोकार था या वह कर्त्तव्य करता था। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(ध) में "कर्मकार" की परिभाषा व्यापक होने के कारण प्रत्यर्थी 3 को धारा 2(ध) के अर्थान्तर्गत ऐसा कर्मकार अभिनिर्धारित करना चाहिए जिसकी सेवा की शर्तें उक्त स्थायी आदेश द्वारा प्रशासित होती थीं। स्थायी आदेश 17 राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी की नियोजन समाप्त करने की शक्ति से सम्बन्धित है। उस स्थायी

आदेश में यह उपबन्धित है कि अथारिटी को नियोजन के निबन्धनों के अधीन 15 दिन की मजदूरी देकर औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम, 1953 के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए किसी कर्मचारी की सेवा समाप्त करने का अधिकार है। उसमें यह उपबन्धित है कि ऐसे कर्मचारियों का नियोजन जिन्हें अवचार का दोषी पाया जाता है, सुसंगत स्थायी आदेशों के उपबन्धों के अनुसार समाप्त किया जा सकता है। सुसंगत स्थायी आदेश 18 है, जिसमें कतिपय कार्यों या लोपों को अवचार की कोटि में आने वाले के रूप में अधिकथित किया गया है। उसके खण्ड (जे) और (एल) में यह अधिकथित है कि कार्य की अभ्यासतः या घोर उपेक्षा या कर्त्तव्य की अभ्यासतः या घोर उपेक्षा या उपेक्षा करना जिसके परिणामस्वरूप ट्रान्सपोर्ट की हानि होती हो, तो वह अवचार होगा। किन्तु स्थायी आदेशों में ऐसे अवचार के किसी दोषी कर्मचारी पर विचार करने के लिए कोई प्रक्रिया उपबन्धित नहीं है। यह सुस्थापित है कि राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी को स्थायी आदेश 18 में प्रगणित किसी अवचार के आधार पर किसी कर्मचारी की सेवाएं समाप्त करनी हों तो वह ऐसा केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप कर सकता है। इसलिए ऐसे मामले में अथारिटी को सम्बन्धित कर्मचारी को उसके विरुद्ध अभिकथित आरोप बताने पड़ेंगे और उसे सुनवाई का अवसर देना पड़ेगा। अपीलार्थी कारपोरेशन के महाप्रबन्धक के पूर्वतन निर्दिष्ट किए गए तारीख 30 जनवरी, 1960 वाले पत्र से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी 3 की सेवाएं समाप्त किए जाने का कारण यह था कि उसके सम्बन्ध में यह पाया गया था कि उसने अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में गम्भीर प्रकृति की अनियमितताएं की थीं। अतः प्रत्यर्थी 3 की सेवाओं की समाप्ति उसके द्वारा अपने कर्त्तव्यों के निवर्हन में की गई थी और प्रथमदृष्टया वह दण्ड के रूप में की गई थी और वह मात्र सेवा की समाप्ति नहीं थी। जैसा कि सुस्थापित है, चाहे सेवा की समाप्ति का आदेश मात्र सेवा की समाप्ति के आदेश के शब्दों में ही क्यों न व्यक्त किया गया हो, वह श्रम न्यायालय, जिसे न्यायनिर्णयन के लिए कोई औद्योगिक विवाद निर्दिष्ट किया गया हो, प्रश्नगत आदेश की प्रत्यक्ष शब्द रचना की पृष्ठभूमि पर विचार करने का और यह विचार करने का हकदार है कि क्या वह आदेश मात्र सेवा की समाप्ति का आदेश है या दण्ड के रूप में अधिरोपित किया गया है। श्रम न्यायालय, जिसके साथ उच्च न्यायालय भी सहमत हुआ है, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह आदेश मात्र सेवा की समाप्ति का आदेश नहीं था, बल्कि उपर्युक्त अनियमितताओं के लिए प्रत्यर्थी 3 पर शास्ति के रूप में अधिरोपित किया गया था। यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि उक्त निष्कर्ष अयुक्तियुक्त या विपरीत था और परिणामतः सरशियोराई

(उत्प्रेषण) के लिए किए गए रिट में ऐसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय हकदार नहीं होगा। इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अपने परमाधिकार की अधिकारिता के प्रयोग में श्रम न्यायालय के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने से इंकार करना उचित था।

7. अभिलेख से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सुलह अधिकारी के समक्ष प्रत्यर्थी 3 का मामला प्रत्यर्थी संघ द्वारा प्रस्तुत किया गया था और उसकी पैरवी की गई थी। इसलिए यह विवाद बिहार सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन निर्देश्य औद्योगिक विवाद था और निर्देश सक्षम था।

8. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी कारपोरेशन राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी का हक-उत्तराधिकारी था और इसलिए उक्त अथारिटी की बाध्यताएं और दायित्व अपीलार्थी कारपोरेशन को न्यागत हो गए। दलील यह दी गई थी कि वह ऐसा हक-उत्तराधिकारी नहीं था और यह कि राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी द्वारा उक्त उपक्रम का चलाया जाना एक बार बन्द कर दिए जाने के पश्चात् उस अथारिटी और प्रत्यर्थी 3 के बीच स्वामी और सेवक का सम्बन्ध नहीं रहा था और इसलिए प्रत्यर्थी 3 के लिए जो कुछ उपचार था, वह उस अथारिटी के विरुद्ध होगा न कि अपीलार्थी कारपोरेशन के विरुद्ध। यह भी दलील दी गई थी कि उस अधिसूचना की शर्तों के अधीन जिसके द्वारा अपीलार्थी कारपोरेशन की स्थापना की गई थी, कारपोरेशन ने उक्त अथारिटी की केवल शक्तियां और कृत्य ग्रहण किए थे न कि उसकी बाध्यताएं और दायित्व। परिणामतः बहाली और प्रतिकर का आदेश विधि के प्रतिकूल था।

9. जैसा कि ऊपर कहा गया है अपीलार्थी कारपोरेशन की स्थापना रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ऐक्ट, 1950 की धारा 3 के अधीन जारी की गई तारीख 20 अप्रैल, 1959 की अधिसूचना के द्वारा की गई थी। उस अधिसूचना के खण्ड 2 के अधीन अपीलार्थी कारपोरेशन को उन सभी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का पालन करने के लिए सशक्त किया गया था, जिनका प्रयोग और पालन तब तक राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी द्वारा किया जाता था। यह स्पष्ट है कि राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी की शक्तियां और कृत्य परिवहन उपक्रम को चलाना और संचालित करना था। उस प्रयोजन के लिए उसका मुख्य कृत्य उस उपक्रम का प्रशासन और प्रबन्ध करना है, जिससे पर्याप्त कर्मचारिवृन्द का नियोजन अनिवार्य हो जाता है। ऐसे कर्मचारिवृन्द का नियोजन और उनकी सेवा की शर्तों का विनियमन, जिसके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्रवाई भी है, स्पष्टतः राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी की ऐसी शक्तियां और कृत्य हैं जिन

शक्तियों और कृत्यों का उक्त अधिसूचना के अधीन अपीलार्थी कारपोरेशन द्वारा भी प्रयोग और पालन किया जाना था। इसके अलावा उच्च न्यायालय में अपीलार्थी कारपोरेशन द्वारा फाइल किए गए रिट पिटीशन के पैरा 5 में कारपोरेशन ने स्पष्ट शब्दों में साग्रह कथन किया है कि उसने राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी के ऐसे कर्मचारियों को 1 मई, 1959 से अपनी सेवा में ग्रहण किया था, जो उसके अस्तित्व में आने की तारीख को उक्त अथारिटी की पंजी में थे। जैसा कि उच्च न्यायालय ने सही मत व्यक्त किया है कि उक्त साग्रह कथन का उचित अर्थान्वयन करने पर, यदि प्रत्यर्थी 3 की सेवाओं की समाप्ति अविधिमान्य थी तो वह कभी भी प्रवर्तनशील नहीं हुआ और इसलिए प्रत्यर्थी 3 के सम्बन्ध में यह समझा जाएगा कि वह 1 मई, 1959 को सेवा में बना हुआ था इसलिए वह उसकी पंजी में था। इस दृष्टि से यही समझा जाना चाहिए अपीलार्थी कारपोरेशन ने प्रत्यर्थी 3 की सेवाएं ग्रहण की थीं। लेकिन दलील यह थी कि उक्त साग्रह कथन का वास्तविक अर्थ यह था कि राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी के के केवल उन्हीं कर्मचारियों को ग्रहण किया गया, जो वस्तुतः उसकी पंजी में थे और उन्हें नहीं जिन्हें उसकी पंजी में समझा गया था। जिनके नाम वस्तुतः पंजी में थे और जिनके नाम यद्यपि वास्तविक रूप से पंजी में नहीं थे, किन्तु विधि की दृष्टि में जिनके नाम पंजी में समझे गए थे, के बीच ईप्सित प्रभेद को समझना कठिन है। यदि प्रत्यर्थी 3 विधि की दृष्टि में सेवा में बना रहा था तो इस बात से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता कि उसका नाम पंजी में वस्तुतः था या नहीं था। "पंजी में (आन दि रोल्स)" पद से ऐसे व्यक्ति अभिप्रेत होने चाहिए जो 1 मई, 1959 को राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी की सेवा में थे। उसे सेवा से सेवोन्मुक्त करने वाले आदेश के अवैध होने के कारण प्रत्यर्थी 3 के सम्बन्ध में यह मानना चाहिए कि वह उक्त अथारिटी की सेवा में था और है और इसलिए वह उनमें से एक होगा, जिनकी सेवाएं अपीलार्थी कारपोरेशन द्वारा ग्रहण की गई थीं।

10. इसलिए अपीलार्थी कारपोरेशन के उक्त अथारिटी के हक-उत्तराधिकारी होने के प्रश्न के अलावा प्रत्यर्थी 3 उसकी सेवाओं की किसी विधिक समाप्ति के अभाव में 1 मई, 1959 से अपीलार्थी कारपोरेशन की सेवा में बना रहा और अब भी बना हुआ है और इसलिए कारपोरेशन उसकी मजदूरी, जिसमें वे सभी उपलब्धियां सम्मिलित हैं, जिनका वह 1 मई, 1959 से हकदार था, संदाय करने के लिए बाध्य था। फरवरी से अप्रैल की अवधि के लिए राज्य ट्रान्सपोर्ट अथारिटी उसकी मजदूरी और अन्य ऐसी उपलब्धियां, यदि कोई हों, जिनका वह हकदार था, संदाय करने के लिए दायी थी। उक्त अथारिटी के

1970(2) eILR(PAT) SC 1

हक-उत्तराधिकारी के रूप में कारपोरेशन उक्त अवधि के लिए न कि फरवरी से सितम्बर 1959 तक की अवधि के लिए ही, जैसा कि श्रम न्यायालय ने निदेश दिया था, उक्त मजदूरी संदाय करने का दायी हो गया था।

11. इसलिए उचित आदेश यह होगा कि प्रत्यर्थी 3 के सम्बन्ध में यह माना जाए कि वह 1 मई, 1959 से अपीलार्थी कारपोरेशन की सेवा में है और इसलिए कारपोरेशन 1 मई, 1959 से उसकी मजदूरी और उपलब्धियां संदाय करने का दायी है। उक्त अथारिटी के हक-उत्तराधिकारी के रूप में वह फरवरी से अप्रैल, 1959 के महीनों की मजदूरी और उपलब्धियां संदाय करने का भी दायी हो गया था। श्रम न्यायालय द्वारा पारित आदेश में इस उपान्तरण के अतिरिक्त वह अधिनिर्णय कायम रहेगा। अपील असफल होती है और खर्चे सहित खारिज की जाती है। यह खर्च केवल एक सुनवाई की फीस तक ही सीमित रहेगा।

अपील खारिज की गई।

च०/क०